दैनिक जनसत्ता, चंडीगढ़, 22-6-93

जबरन बेदखली के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र का ऐतिहासिक प्रस्ताव

संयुक्त राष्ट्र ने अपने गत मार्च माह में पारित एक प्रस्ताव द्वारा पूरे के पूरे समुदायों की जबरन बेदखली के 'मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन' घोषित करते हुए देशों की सरकारों को हिदायत दी है कि वे उन प्रक्रियाओं से बाज आएं, जिनके कारण लोगों तथा समुदायों को बड़े पैमाने पर उनके घर-बारों से विस्थापित होना पड़ता है।

इस समय जबकि सरदार सरोवर जैसी तथाकथित विकास-परियोजनाओं तथा संरचनात्मक समायोजन की नई नीतियों के कारण मानव-विस्थापन की समस्या उत्तरोत्तर गंभीर होती जा रही है, इस युग-प्रवर्तक प्रस्ताव का महत्व और भी बढ़ गया है। इस बात से भी प्रस्ताव का महत्व बढ़ता है कि जब संयुक्त राष्ट्र मानव-अधिकार आयोग ने यह प्रस्ताव सर्वानुमति से पारित किया, तब भारत इस पर हस्ताक्षर करने का ज्यादा इच्छुक नहीं था। संयुक्त राष्ट्र की यह मानव अधिकारों से संबंधित अग्रणी नीति निर्धारक संस्था है। इस प्रस्ताव के पारित करवाने का श्रेय मैक्सिको की स्वयंसेवी संस्था हैबिटेट इंटरनेशनल कोएलिशन (एच.आई.सी.) को जाता है, जिसने तीन वर्ष तक चली चर्चाओं और सारी दुनिया में आवास समस्याओं के अध्ययन व आंकड़ों के संकलन के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र को यह काम हाथ में लेने के लिए राजी किया।

जबरन बेदखली की समस्या उस विश्वव्यापी प्रथा का अनिवार्य अंग है, जो यह मानती है कि आधुनिक विकास की प्रक्रिया में 'व्यापक हित' के लिए कुछ लोगों को त्याग तो करना ही पड़ता है। सारी दुनिया में कितने लोग व समुदाय अब तक 'विकास' के नाम पर बेदखल किए जा चुके हैं, इसके आंकड़े तो उपलब्ध नहीं है, लेकिन कुछ विश्लेषकों के अनुसार अकेले भारत में ही पिछले दशकों के दौरान इस तरह से दो-तीन करोड़ लोग उजड़ चुके हैं। कनाडा की संस्था 'प्रोब इंटरनेशनल' के अनुसार सारी दुनिया में तो पिछले कुछ बरसों की अवधि में ही करोड़ों लोग विकास-योजनाओं के चलते बेदखल हुए हैं तथा विश्वबैंक की वित्तीय मदद से चल रही परियोजनाओं के कारण ही कोई १५ लाख लोगों को अपनी जमीनों से हटना पड़ेगा।

विस्थापन की समस्या कई विभिन्न प्रकार की मानवीय गतिविधियों के कारण होती है। मसलन, सरदार सरोवर जैसे बड़े बांध से कोई एक लाख लोग उनकी जमीनें डूब में आने के कारण प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होंगे तथा नहरों के निदाय संजाल (नेट वर्क) से इनके अलावा सत्तर से अस्सी हजार लोग विस्थापित होंगे। सड़कों, बिजली-घरों तथा कालोनियों के निर्माण से जो लोग जमीनों से वंचित होंगे, इनकी संख्या इसमें शामिल नहीं है। इतना ही नहीं, डूब में आने वाले इलाकों के निवासियों के अन्यत्र बसाए जाने, पुनर्वनीकरण हेतु जमीनों के अधिग्रहण के कारण वनों पर आजीविका के लिए आश्रित लोगों के हटाए जाने तथा वन्य जीवन अभयारण्यों के कारण समुदायों के हटाए जाने के कारण भी भारी पैमाने पर भी परोक्ष विस्थापन इस बांध के निर्माण के कारण होंगे।

परियोजना-संबंधित विस्थापन के मामले में नर्मदा-घाटी योजना तो हिमशिला का मात्र दिखलाई देने वाला दसवां हिस्सा ही है। उसके अलावा बिहार के सुवर्ण रेखा बांध, उड़ीसा के बलियापाल प्रक्षेपास्त्र-केन्द्र, देश के विभिन्न भागों में बन रहे सुपर ताप-बिजली घरों, उड़ीसा तथा तमिलनाडु के तटवर्ती इलाकों में विकसित किए जा रहे झींगा-प्रजनन क्षेत्रों, कर्नाटक के कैगा परमाणु-ऊर्जा संयंत्र तथा अन्य बीसियों ऐसी ही परियोजनाओं के कारण देश में समूचे जन-समुदायों को बेदखल किया जा रहा है।

विराट परियोजनाओं के अलावा विस्थापन का एक बहुत बड़ा कारण शहरी जरूरतों की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन भी है। इस वजह से जंगलों तथा जमीनों के जरिए परम्परागत रूप से अपनी आजीविकाएं अर्जित करने वालों को अपनी जगहों से हटना पड़ता है। कई सीमांत किसानों की तकलीफें व्यापारिक फसलों के प्रति बढ़े आग्रह के कारण बढ़ीं, तो कुछ लोगों को साम्प्रदायिक टकरावों के कारण भी अपने घर-बारों से उखड़ना पड़ा है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने गरीब देशों में जो संरचनात्मक समायोजन लागू किए है, वे भी इसी रुझान को बढ़ावा देंगे, क्योंकि उनके चलते भी विकास की दिशा को कुछ मुट्ठी भर उपभोक्तावादी श्रेष्ठी वर्ग की जरूरतों की पूर्ति की तरफ ही मोड़ा जा रहा है। नकद फसलों की खेती भी चूंकि बड़े किसान ही कर सकते है, सीमान्त किसानों को उनके रास्ते से हट जाना पड़ता है।

इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र के भेदभाव उन्मूलन तथा अल्पसंख्यक संरक्षण उप-आयोग ने अगस्त १९९१ में जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, उसमें समाजों में मौजूद संरचनात्मक विषमताओं को जबरन बेदखली का एक बड़ा कारण माना गया था। उसमें इस तथ्य के प्रति बड़ी समझदारी भरी स्वीकारोक्ति थी कि जबरन बेदखलियों के पीछे वास्तविक प्रेरणा नस्ल, जातीय-मूल, राष्ट्रीयता, लिंग तथा सामाजिक, आर्थिक व अन्य हैसियतों पर आधारित भेदभाव की ही होती है। देशों की सरकारें बेदखली से जुड़ी हिंसा को अक्सर 'शहरी पर्यावरण की सफाई', 'शहरी नवीकरण', 'भीड़ कम करने' तथा 'प्रगति और विकास' जैसे भ्रामक नाम दे देती हैं। उस प्रस्ताव में इस प्रक्रिया से जुड़े लोगों तथा एजेंसियों की पहचान भी की गयी तथा कहा गया था-बेदखली की त्रासदी का क्रियान्वयन, अनुमोदन, स्वीकृति, मांग, प्रस्ताव, पहल तथा उसे सहन करने वालों में राष्ट्रीय सरकारें, अधिग्रहण-प्राधिकरण, स्थानीय शासन, डेवलपर, प्लानर, जमीदार, जायदाद के सटोरिए, द्विपक्षीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं तथा सहायता एजेंसियां भी शामिल है।

मानव-अधिकार आयोग के ताजा प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि व्यक्तियों, परिवारों तथा समूहों को उनकी मर्जी के बगैर उनके घरों से बेदखल करने तथा समाज में जो विषमताजनित टकराव पैदा होता है, उससे सबसे ज्यादा प्रभावित समाज का सबसे गरीब तथा सामाजिक, पर्यावरणिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से घाटे में रहने वाला तबका होता है।

प्रस्ताव में सरकारों से कहा गया है कि वे उन लोगों के संपत्ति-अधिकारों को कानूनी संरक्षण प्रदान करें, जिनके निकट भविष्य में बेदखल किये जाने का खतरा है तथा किसी भी विकास योजना को हाथ में लेने के पूर्व उससे प्रभावित होने वाले इन लोगों को उसकी आयोजना में भागीदार बना, उनसे सलाह-मशविरा तथा चर्चा करें। 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' की भी एक प्रमुख मांग यही है कि विकास आयोजना में किसी भी प्रकल्प से प्रभावित होने वालों की पूर्ण भागीदारी होनी चाहिए तथा किसी भी समुदाय की बेदखली का उसकी रजा-मंदी के बगैर न्यायोचित नहीं माना जा सकता।

जो लोग पहले ही विस्थापित कर दिये गये हैं, उनके बारे में उक्त प्रस्ताव में कहा गया है कि उन्हें तत्काल राहत, मुआवजा, उपयुक्त तथा पर्याप्त वैकल्पिक ऐसी जगह या जमीन प्रदान की जाए, जो उनकी आकांक्षाओं और जरूरतों के अनुरूप हो। यह चीज भारत जैसे देशों के लिए खासतौर से जरूरी है, जहां हीराकुंड तथा पोंग बांधों के कारण विस्थापित हजारों लोगों को अभी कि पर्याप्त रूप से पुनर्वासित नहीं किया गया है।

आयोग ने संयुक्त राष्ट्र महासचिव से कहा है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून तथा न्यायशास्त्र के विश्लेषण तथा सरकारों, संयुक्त राष्ट्र की इस विषय से संबंधित एजेंसियों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सामुदायिक संगठनों से प्राप्त जानकारी के आधार पर एक ऐसी विश्लेषणात्मक रपट तैयार करें, जिसमें नर्मदा बचाओ आंदोलन जैसी बेदखली-विरोधी अभियानों द्वारा निर्मित अंतर्दृष्टियों का भी समावेश हो।

भारत में इस प्रस्ताव का कितना असर होगा?

हमारे विचार से भारत सरकार पर मामूली-सा नैतिक दबाव बनाने के अलावा इस प्रस्ताव का कोई खास असर होने की उम्मीद नहीं है, जबकि प्रस्ताव के निहितार्थ को यदि ठीक ढंग से पेश किया जाए तो वह उसके हाथों में कारगर उपकरण बन सकता है। यह चीज काफी अहमियत रखती है कि इस प्रस्ताव में यह माना गया है कि जबरन बेदखली की प्रथा उस अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार समझौते (आई.सी.ई.एस.आर.) के अनुकूल नहीं है, जिस पर दुनिया के ११८ देशों के साथ भारत ने भी दस्तखत किए है। इस समझौते की धारा- ११ (१) में सभी देशों से यह कहा गया है कि उनकी सरकारें प्रत्येक व्यक्ति व उसके परिवार के लिए उसके वाजिब जीवन-स्तर (जिसमें पर्याप्त भोजन, कपड़ा और मकान का होना शामिल है) प्राप्त करने के अधिकार को मान्य करें। बेदखली की इजाजत कुछ बहुत ही विशेष परिस्थितियों में तथा अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के तहत ही दी जानी चाहिए।

आई.सी.ई.एस.आर. की निगरानी समिति ने इन सरोकारों को मद्देनजर रखते हुए ही दिसम्बर, १९९२ में पनामा तथा होमिनिकन गणतंत्र को उस समझौते के उल्लंघन करने वाला देश घोषित किया। इस हेतु समिति को प्रमाण व जानकारी एच.आई.सी. ने ही उपलब्ध करवाए थे। यह एक ऐसा पूर्वोदाहरण है, जो कि भारतीय परिस्थितियों में बहुत ही ज्यादा प्रासंगिक है।

भारतीय संविधान की धारा-५१ (सी) के अनुसार यह सरकार का अनिवार्य कर्तव्य है कि 'वह संगठित लोगों के एक-दूसरे से व्यवहारों, संधि-उत्तरदायित्वों के प्रति सम्मान की भावना को बढ़ावा दे।' अतः यह भारत सरकार की संवैधानिक जिम्मेदारी हो जाती है कि वह उक्त प्रस्ताव के मार्गदर्शक सिद्धांतों की जरूरतें पूरी करने के लिए आवश्यक कानून बनाए और नीतियों में परिवर्तन भी करें गत फरवरी-मार्च महीनों में हुए संयुक्त राष्ट्र मानव-अधिकार आयोग के सत्रों के दौरान भारत सरकार ने बगैर किसी हिचक के इस प्रस्ताव का समर्थन किया था लेकिन उसके बाद अपने लगभग सारे क्रिया कलापों में वह उस प्रस्ताव की उलटी दिशा में जाती प्रतीत होती है। सरदार सरोवर का जो समर्थन सरकार ने, इस परियोजना की व्यापक बदनामी तथा इस बात के अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हो जाने के बावजूद किया कि उसमें बुनियादी शर्तों तक का पालन नहीं किया जा रहा है, उससे यह बात साबित हो रही है। बल्कि बांध का एक नया औचित्य यह प्रचारित किया जा रहा है कि 'विकास का अधिकार' मानव-अधिकार सिद्धांतों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। बैंकाक में जो एशियाई क्षेत्रीय बैठक मानव अधिकारों पर होने वाले विश्व सम्मेलन की तैयारी के लिए हुई, उसमें भी हमारी सरकार ने यही रुख अपनाया। निश्चय ही यह अंतर्विरोधी तर्क हमारी सरकार अपने मानव अधिकार उल्लंघनों को उचित ठहराने के लिए दे रही है। इसका साफ मतलब यही है कि सरकार अपने कु-परिभाषित विकास प्रादर्श के नाम पर बेदखली सहित अन्य मानव अधिकारों का उल्लंघन जारी रखेगी।

अतः इस स्थिति में जन-संगठनों, मजदूर संघों तथा बेदखली विरोधी अभियानों के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे संयुक्त राष्ट्र के उक्त प्रस्ताव का उपयोग मानव अधिकारों के पक्ष में करें। इस वक्त देश में अग्रणी तथा तरक्की पसन्द वकीलों का यह कर्तव्य बनता है कि वे हमारे संविधान तथा संयुक्त राष्ट्र के उक्त प्रस्ताव की मदद से जबरन बेदखली के प्रकरणों को चुनौती देने के लिए एक मजबूत कानूनी मुद्दा तैयार करें। प्रसार माध्यमों की भी यह जिम्मेदारी है कि संयुक्त राष्ट्र के इस अल्प-प्रचारित प्रस्ताव की जानकारी हर स्तर के अधिकारियों तथा नौकरशाही के अलावा आम जनता को भी दें, क्योंकि खुद सरकार तो ऐसा करने से रही। यह सब करते हुए ही हर विनाशकारी विकास के चलते होने वाली जबरन बेदखलियों की असंवैधानिक तथा निंदनीय प्रथा को समाप्त कर सकते है।

मिलून कोठारी/आशीष कोठारी

(7)

दै. जनमोर्चा - फैजाबाद, 22-6-93

जबरन बेदखली के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र का ऐतिहासिक प्रस्ताव

संयुक्त राष्ट्र ने अपने गत मार्च माह मे पारित एक प्रस्ताव द्वारा पूरे के पूरे समुदायों की जबरन बेदखली के 'मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन' घोषित करते हुए देशों की सरकारों को हिदायत दी है कि वे उन प्रक्रियाओं से बाज आएं, जिनके कारण लोगों तथा समुदायों को बड़े पैमाने पर उनके घर-बारों से विस्थापित होना पड़ता है।

इस समय जबकि सरदार सरोवर जैसी तथाकथित विकास-परियोजनाओं तथा संरचनात्मक समायोजन की नई नीतियों के कारण मानव-विस्थापन की समस्या उत्तरोत्तर गंभीर होती जा रही है, इस युग-प्रवर्तक प्रस्ताव का महत्व और भी बढ़ गया है। इस बात से भी प्रस्ताव का महत्व बढ़ता है कि जब संयुक्त राष्ट्र मानव-अधिकार आयोग ने यह प्रस्ताव सर्वानुमति से पारित किया, तब भारत इस पर हस्ताक्षर करने का ज्यादा इच्छुक नही था। संयुक्त राष्ट्र की यह मानव अधिकारों से संबंधित अग्रणी नीति निर्धारक संस्था है। इस प्रस्ताव के पारित करवाने का श्रेय मैक्सिको की स्वयंसेवी संस्था हेबिटेट इंटरनेशनल कोएलिशन (एच.आई.सी.) को जाता है, जिसने तीन वर्ष तक चली चर्चाओं और सारी दुनिया में आवास समस्याओं के अध्ययन व आंकड़ों के संकलन के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र को यह काम हाथ में लेने के लिए राजी किया।

जबरन बेदखली की समस्या उस विश्वव्यापी प्रथा का अनिवार्य अंग है, जो यह मानती है कि आधुनिक विकास की प्रक्रिया में 'व्यापक हित' के लिए कुछ लोगों को त्याग तो करना ही पड़ता है। सारी दुनिया में कितने लोग व समुदाय अब तक 'विकास' के नाम पर बेदखल किए जा चुके है, इसके आंकड़े तो उपलब्ध नही है, लेकिन कुछ विश्लेषकों के अनुसार अकेले भारत में ही पिछले दशकों के दौरान इस तरह से दो-तीन करोड़ लोग उजड़ चुके है। कनाडा की संस्था 'प्रोब इंटरनेशनल' के अनुसार सारी दुनिया में तो पिछले कुछ बरसों की अवधि में ही करोड़ों लोग विकास-योजनाओं के चलते बेदखल हुए है तथा विश्वबैंक की वित्तीय मदद से चल रही परियोजनाओं के कारण ही कोई १५ लाख लोगों को अपनी जमीनों से हटना पड़ेगा।

विस्थापन की समस्या कई विभिन्न प्रकार की मानवीय गतिविधियों के कारण होती है। मसलन, सरदार सरोवर जैसे बड़े बांध से कोई एक लाख लोग उनकी जमीनें डूब में आने के कारण प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होंगे तथा नहरों के निदाय संजाल (निट वर्क) से इनके अलावा सत्तर से अस्सी हजार लोग विस्थापित होंगे। सड़कों, बिजली-घरों तथा कालोनियों के निर्माण से जो लोग जमीनों से वंचित होंगे, इनकी संख्या इसमे शामिल नही है। इतना ही नही, डूब मे आने वाले इलाकों के निवासियों के अन्यत्र बसाए जाने, पुनर्वनीकरन हेतु जमीनों के अधिग्रहण के कारण वनों पर आजीविका के लिए आश्रित लोगों के हटाए जाने तथा वन्य जीवन अभयारण्यों के कारण समुदायों के हटाए जाने के कारण भी भारी पैमाने पर भी परोक्ष विस्थापन इस बांध के निर्माण के कारण होंगे।

परियोजना-संबंधित विस्थापन के मामले में नर्मदा-घाटी योजना तो हिमशिला का मात्र दिखलाई देने वाला दसवां हिस्सा ही है। उसके अलावा बिहार के सुवर्ण रेखा बांध, उड़ीसा के बलियापाल प्रक्षेपास्त्र-केन्द्र, देश के विभिन्न भागों में बन रहे सुपर ताप-बिजली घरों, उड़ीसा तथा तमिलनाडु के तटवर्ती इलाकों में विकसित किए जा रहे झींगा-प्रजनन क्षेत्रों, कर्नाटक के कैगा परमाणु-ऊर्जा संयंत्र तथा अन्य बीसियों ऐसी ही परियोजनाओं के कारण देश में समूचे जन-समुदायों को बेदखल किया जा रहा है।

विराट परियोजनाओं के अलावा विस्थापन का एक बहुत बड़ा कारण शहरी जरूरतों की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन भी है। इस वजह से जंगलों तथा जमीनों के जरिए परम्परागत रूप से अपनी आजीविकाएं अर्जित करने वालों को अपनी जगहों से हटना पड़ता है। कई सीमांत किसानों की तकलीफें व्यापारिक फसलों के प्रति बड़े आग्रह के कारण बढ़ीं, तो कुछ लोगों को साम्प्रदायिक टकरावों के कारण भी अपने घर-बारों से उखड़ना पड़ा है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने गरीब देशों में जो संरचनात्मक समायोजन लागू किए है, वे भी इसी रूझान को बढ़ावा देंगे, क्योंकि उनके चलते भी विकास की दिशा को कुछ मुट्ठी भर उपभोक्तावादी श्रेष्ठी वर्ग की जरूरतों की पूर्ति की तरफ ही मोड़ा जा रहा है। नकद फसलों की खेती भी चूंकि बड़े किसान ही कर सकते है, सीमान्त किसानों को उनके रास्ते से हट जाना पड़ता है।

इस संबंध मे संयुक्त राष्ट्र के भेदभाव उन्मूलन तथा अल्पसंख्यक संरक्षण उप-आयोग ने अगस्त १९९१ में जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, उसमें समाजों में मौजूद संरचनात्मक विषमताओं को जबरन बेदखली का एक बड़ा कारण माना गया था। उसमें इस तथ्य के प्रति बड़ी समझदारी भरी स्वीकारोक्ति थी कि जबरन बेदखलियों के पीछे वास्तविक प्रेरणा नस्ल, जातीय-मूल, राष्ट्रीयता, लिंग तथा सामाजिक, आर्थिक व अन्य हैसियतों पर आधारित भेदभाव की ही होती है। देशों की सरकारें बेदखली से जुड़ी हिंसा को अक्सर 'शहरी पर्यावरण की सफाई', 'शहरी नवीकरण', 'भीड़ कम करने' तथा 'प्रगति और विकास' जैसे भ्रामक नाम दे देती हैं। उस प्रस्ताव मे इस प्रक्रिया से जुड़े लोगों तथा एजेंसियों की पहचान भी की गयी तथा कहा गया था-बेदखली की त्रासदी का क्रियान्वयन, अनुमोदन, स्वीकृति, मांग, प्रस्ताव, पहल तथा उसे सहन करने वालो में राष्ट्रीय सरकारें, अधिग्रहण-प्राधिकरण, स्थानीय शासन, डेबलपर, प्लानर, जमीदार, जायदाद के सटोरिए, द्विपक्षीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं तथा सहायता एजेंसियां भी शामिल है।

मानव-अधिकार आयोग के ताजा प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि व्यक्तियों, परिवारों तथा समूहों को उनकी मर्जी के बगैर उनके घरों से बेदखल करने तक समाज में जो विषमताजनित टकराव पैदा होता है, उससे सबसे ज्यादा प्रभावित समाज का सबसे गरीब तथा सामाजिक, पर्यावरणिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से घाटे में रहने वाला तबका होता है।

प्रस्ताव में सरकारों से कहा गया है कि वे उन लोगों के संपत्ति-अधिकारों को कानूनी संरक्षण प्रदान करें, जिनके निकट भविष्य में बेदखल किये जाने का खतरा है तथा किसी भी विकास योजना को हाथ में लेने के पूर्व उससे प्रभावित होने वाले इन लोगों को उसकी आयोजना में भागीदार बना, उनसे सलाह-मशविरा तथा चर्चा करें। 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' की भी एक प्रमुख मांग यही है कि विकास आयोजना में किसी भी प्रकल्प से प्रभावित होने वालो की पूर्ण भागीदारी होनी चाहिए तथा किसी भी समुदाय की बेदखली का उसकी रजा-मंदी के बगैर न्यायोचित नही माना जा सकता।

जो लोग पहले ही विस्थापित कर दिये गये है, उनके बारे में उक्त प्रस्ताव मे कहा गया है कि उन्हें तत्काल राहत, मुआवजा, उपयुक्त तथा पर्याप्त वैकल्पिक ऐसी जगह या जमीन प्रदान की जाए, जो उनकी आकांक्षाओं और जरूरतों के अनुरूप हो। यह चीज भारत जैसे देशों के लिए खासतौर से जरूरी है, जहां हीराकुंड तथा पौंग बांधों के कारण विस्थापित हजारों लोगों को अभी कि पर्याप्त रूप से पुनर्वासित नहीं किया गया है।

आयोग ने संयुक्त राष्ट्र महासचिव से कहा है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून तथा न्यायशास्त्र के विश्लेषण तथा सरकारों, संयुक्त राष्ट्र की इस विषय से संबंधित एजेंसियो, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सामुदायिक संगठनों से प्राप्त जानकारी के आधार पर एक ऐसी विश्लेषणात्मक रपट तैयार करें, जिसमें नर्मदा बचाओ आंदोलन जैसी बेदखली-विरोधी अभियानों द्वारा निर्मित अंतर्दृष्टियों का भी समावेश हो।

भारत में इस प्रस्ताव का कितना असर होगा?

हमारे विचार से भारत सरकार पर मामूली-सा नैतिक दबाव बनाने के अलावा इस प्रस्ताव का कोई खास असर होने की उम्मीद नही है, जबकि प्रस्ताव के निहितार्थ को यदि ठीक ढंग से पेश किया जाए तो वह उसके हाथों में कारगर उपकरण बन सकता है। यह चीज काफी अहमियत रखती है कि इस प्रस्ताव में यह माना गया है कि जबरन बेदखली की प्रथा उस अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार समझौते (आई.सी.ई.एस.आर.) के अनुकूल नही है, जिस पर दुनिया के ११८ देशों के साथ भारत ने भी दस्तखत किए है। इस समझौते की धारा- ११ (१) मे सभी देशों से यह कहा गया है कि उनकी सरकारें प्रत्येक व्यक्ति व उसके परिवार के लिए उसके वाजिब जीवन-स्तर (जिसमे पर्याप्त भोजन, कपड़ा और मकान का होना शामिल है) प्राप्त करने के अधिकार को मान्य करें। बेदखली की इजाजत कुछ बहुत ही विशेष परिस्थितियों मे तथा अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के तहत ही दी जानी चाहिए।

आई.सी.ई.एस.आर. की निगरानी समिति ने इन सरोकारों को मद्देनजर रखते हुए ही दिसम्बर, १९९२ में पनामा तथा डोमिनिकन गणतंत्र को उस समझौते के उल्लंघन करने वाला देश घोषित किया। इस हेतु समिति को प्रमाण व जानकारी एच.आई.सी. ने ही उपलब्ध करवाए थे। यह एक ऐसा पूर्वोदाहरण है, जो कि भारतीय परिस्थितियो मे बहुत ही ज्यादा प्रासंगिक है।

भारतीय संविधान की धारा-५१ (सी) के अनुसार यह सरकार का अनिवार्य कर्तव्य है कि 'वह संगठित लोगों के एक-दूसरे से व्यवहारों, संधि-उत्तरदायित्वों के प्रति सम्मान की भावना को बढ़ावा दे।' अतः यह भारत सरकार की संवैधानिक जिम्मेदारी हो जाती है कि वह उक्त प्रस्ताव के मार्गदर्शक सिद्धांतों की जरूरतें पूरी करने के लिए आवश्यक कानून बनाए और नीतियों में परिवर्तन भी करें गत फरवरी-मार्च महीनों में हुए संयुक्त राष्ट्र मानव-अधिकार आयोग के सत्रों के दौरान भारत सरकार ने बगैर किसी हिचक के इस प्रस्ताव का समर्थन किया था लेकिन उसके बाद अपने लगभग सारे क्रिया कलापों में वह उस प्रस्ताव की उलटी दिशा में जाती प्रतीत होती है। सरदार सरोवर का जो समर्थन सरकार ने, इस परियोजना की व्यापक बदनामी तथा इस बात के अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हो जाने के बावजूद किया कि उसमे बुनियादी शर्तों तक का पालन नहीं किया जा रहा है, उससे यह बात साबित हो रही है। बल्कि बांध का एक नया औचित्य यह प्रचारित किया जा रहा है कि 'विकास का अधिकार' मानव-अधिकार लिहाजों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। बैंकाक में जो एशियाई क्षेत्रीय बैठक मानव अधिकारों पर होने वाले विश्व सम्मेलन की तैयारी के लिए हुई, उसमें भी हमारी सरकार ने यही रुख अपनाया। निश्चय ही यह अंतरविरोधी तर्क हमारी सरकार अपने मानव अधिकार उल्लंघनों को उचित ठहराने के लिए दे रही है। इसका साफ मतलब यही है कि सरकार अपने कु-परिभाषित विकास प्रादर्श के नाम पर बेदखली सहित अन्य मानव अधिकारों का उल्लंघन जारी रखेगी।

अतः इस स्थिति में जन-संगठनों, मजदूर संघों तथा बेदखली विरोधी अभियानों के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे संयुक्त राष्ट्र के उक्त प्रस्ताव का उपयोग मानव अधिकारों के पक्ष में करें। इस वक्त देश में अग्रणी तथा तरक्की पसन्द वकीलों का यह कर्तव्य बनता है कि वे हमारे संविधान तथा संयुक्त राष्ट्र के उक्त प्रस्ताव की मदद से जबरन बेदखली के प्रकरणों को चुनौती देने के लिए एक मजबूत कानूनी मुद्दा तैयार करें। प्रसार माध्यमों की भी यह जिम्मेदारी है कि संयुक्त राष्ट्र के इस अल्प-प्रचारित प्रस्ताव की जानकारी हर स्तर के अधिकारियों तथा नौकरशाही के अलावा आम जनता को भी दें, क्योंकि खुद सरकार तो ऐसा करने से रही। यह सब करते हुए ही हर विनाशकारी विकास के चलते होने वाली जबरन बेदखलियों की असंवैधानिक तथा निंदनीय प्रथा को समाप्त कर सकें।

मिलून कोठारी/आशीष